श्रमणवेलगोला और श्रीगोम्मटेश्वर

श्रमणबेलगोला दक्षिण भारतमें करनाटक प्रदेशमें हासन जिलेका एक गौरवशाली और ऐतिहासिक स्थान रहा है। यह जैन परम्पराके दि० जैनोंका एक अत्यन्त प्राचीन और सुप्रसिद्ध तीर्थ है। इसे जैन-ग्रन्थकारोंने जैनपुर, जैनविद्री और गोम्मटपुर भी कहा है। यह बेंगलौरसे १०० मील, मैसूरसे ६२ मील, आर्सीकेरीसे ४२ मील, हासनसे ३१ मील और चिनार्यपट्टनसे ८ मील है। यह हासनसे पश्चिमकी ओर अवस्थित है और मोटरसे २-३ घण्टोंका रास्ता है। यह विन्ध्यगिरि और चन्द्रगिरि नामकी दो पहाड़ियोंकी तलहटीमें एक सुन्दर और मनोज्ञ चौकोर तालाबपर, जो प्राकृतिक झीलनुमा है, बसा हुआ है। यह है तो एक छोटा-सा गाँव, पर ऐतिहासिक पुरातत्त्व और धार्मिक दृष्टिसे इसका बड़ा महत्त्व है।

दुष्काल

जैन अनुश्रुतिके अनुसार ई० ३०० सौ वर्ष पूर्व सम्राट चन्द्रगुप्तके राज्यकालमें उत्तर भारतमें जब बारह वर्षका दुष्काल पड़ा तो अन्तिम श्रुतकेवली आचार्य भद्रबाहुके नायकत्वमें १२ हजार श्रमणों (जैन साधुओं)के संघने उत्तर भारतसे आकर इस स्थानकी मनोज्ञता और एकान्तता देखी तथा यहीं रहकर तप और ध्यान किया। आचार्य भद्रबाहुने अपनी आयुका अन्त जानकर यहीं समाधिपूर्वक देहोत्सर्ग किया। सम्राट् चन्द्रगुप्तने भी, जो संघके साथ आया था, अपना शेष जीवन संघ व गुरु भद्रबाहुकी सेवामें व्यतीत किया था।

इस स्थानको श्रमणबेलगोला इसलिए कहा गया कि उक्त श्रमणों (जैन साधुओं) ने यहाँके बेलगोल (सफेद तालाब) पर तप, ध्यानादि किया तथा आवास किया था। तब कोई गाँव नहीं था, केवल सुरम्य पहाड़ी प्रदेश था।

यहाँ प्राप्त सैकड़ों शिलालेख, अनेक गुफाएँ, कलापूर्ण मन्दिर और कितनी ही विशाल एवं भव्य जैन मूर्तियाँ भारतके प्राचीन गौरव और इतिहासको अपनेमें छिपाये हुए हैं। इसी स्थानके विन्ध्यगिरिपर गंगवंश-के राजा राचमल्ल (ई० ९७५-९८४) के प्रधान सेनापति और प्रधान मन्त्री वीर-मार्तण्ड चामुण्डराय द्वारा एक ही पाषाणमें उत्कीर्ण करायी गई श्री गोमेटेश्वर बाहुबलिकी वह विश्वविख्यात ५७ फुट ऊँची विशाल मूर्त्ति है, जिसे विश्वके दर्शक देखकर आश्चर्य-चकित हो जाते हैं। दूसरी पहाड़ी चन्द्रगिरिपर भी अनेक मन्दिर व बसतियाँ बनी हुई हैं। इसी पहाड़ीपर सम्राट् चन्द्रगुप्तने भी चन्द्रगुप्त (प्रभाचन्द्र) मुनि होकर समाधिपूर्वक शरीर त्यागा था और इसके कारण ही इस पहाड़ीका नाम चन्द्रगिरि पड़ा। इन सब बातोंसे 'श्रमणबेलगोला' का जैन परम्परामें बड़ा महत्व है। एक बार मैसूर राज्यके एक दीवानने कहा था कि "सम्पूर्ण सुन्दर मैसूर राज्यमें श्रमणवेलगोला सदृश अन्य स्थान नहीं है, जहाँ सुन्दरता और भव्यता दोनोंका सम्मिश्रण पाया जाता हो।" यह स्थान तभीसे पावन तीर्थके रूपमें प्रसिद्ध है।

परिचय

यहाँ गोम्मटेश्वर और उनकी महामूर्तिका परिचय वहींके प्राप्त शिलालेखों द्वारा दे रहे हैं। शिला-लेख नं० २३४ (८५) में लिखा है कि—"गोम्मटेश्वर ऋषभदेव प्रथम तीर्थंकरके पुत्र थे। इनका नाम बाहु-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बली या भुजबली था। इनके ज्येष्ठ भ्राता भरत थे। ऋषभदेवके दीक्षित होनेके पश्चाद् भरत और बाहुबली दोनों भाइयोंमें साम्राज्यके लिए युद्ध हुआ। युद्धमें बाहुबलिकी विजय हुई। पर संसारकी गति (राज्य जैसी तुच्छ चीजके लिए भाइयोंका परस्परमें लड़ना) देखकर बाहुबलि विरक्त हो गये और राज्य अपने ज्येष्ठ भ्राता भरतको देकर तपस्या करनेके लिए वनमें चले गये। एक वर्षकी कठोर तपस्याके उपरान्त उन्हें केवलज्ञान प्राप्त हुआ। भरतने, जो सम्राट् हो गये थे, बाहुबलीके चरणोंमें पहुँचकर उनकी पूजा एवं भक्ति की। बाहुबलीके मुक्त होनेके पश्चात् उन्होंने उनकी स्मृतिमें उनकी शरीराकृतिके अनुरूप ५२५ धनुषप्रमाणकी एक प्रस्तर मूर्ति स्थापित कराई। कुछ काल पश्चात् मूर्तिके आस-पासका प्रदेश कुक्कुट सर्पोंसे व्याप्त हो गया, जिससे उस मूर्तिका नाम कुक्कुटेश्वर पड़ गया। धीरे-धीरे वह मूर्ति लुप्त हो गयी और उसके दर्शन अगम्य एवं दुर्लभ हो गये। गंगनरेश रायमल्लके मन्त्री चामुण्डरायने इस मूर्तिका वृतान्त सुना और उन्हें उसके दर्शन करनेकी अभिलाषा हुई, पर उस स्थान (पोदनपुर) की यात्रा अशक्य जान उन्होंने उसीके समान एक सौम्य मूर्त्ति स्थापित करनेका विचार किया और तदनुसार इस मूर्त्तिका निर्माण कराया।"

कवि वोप्पण (११८० ई०) ने इस मूर्तिकी प्रशंसा करते हुए लिखा है कि "यदि कोई मूर्ति अत्युन्नत (विशाल) हो, तो यह आवश्यक नहीं कि वह सुन्दर भी हो। यदि विशालता और सुन्दरता दोनों भी हों, तो यह आवश्यक नहीं कि उसमें अलौकिक वैभव (भव्यता) भी हो। गोम्मटेश्वरकी मूर्तिमें विशालता, सुन्दरता और अलौकिक वैभव तीनोंका सम्मिश्रण है। गोम्मटेश्वरकी मूर्तिसे बढ़कर संसारमें उपासनाके योग्य अन्य क्या वस्तु हो सकती है?"

पाश्चात्य विद्वान् फर्गुसनने अपने एक लेखमें लिखा है कि "मिस्र देशके सिवाय संसार भरमें अन्यत्र इस मूर्तिसे विशाल और प्रभावशाली मूर्ति नहीं है।"

पुरातत्त्वविद् डा० कृष्ण लिखते हैं कि "शिल्पीने जैनधर्मके सम्पूर्ण त्यागकी भावना इस मूर्तिके अंग-अंगमें अपनी छैनीसे भर दी है। मूर्त्तिकी नग्नता जैनधर्मके सर्व त्यागकी भावनाका प्रतीक है। एकदम सीधे और मस्तक उन्नत किये खड़े इस प्रतिबिम्बका अंग-विन्यास पूर्ण आत्म-निग्रहको सूचित करता है। होंठोंकी दयामयी मुद्रासे स्वानुभूत आनन्द और दुःखी दुनियाके साथ मूक सहानुभूतिकी भावना व्यक्त होती है।"

हिन्दी जगत्के प्रसिद्ध विद्वान् काका कालेलकरने एक लेखमें लिखा है—"मूर्त्तिका सारा शरीर भरावदार, यौवनपूर्ण, नाजुक और कान्तिमय है। एक ही पत्थरसे निर्मित इतनी सुन्दर मूर्त्ति संसारमें और कहीं नहीं। इतनी बड़ी मूर्त्ति इतनी अधिक स्निग्ध है कि भक्तिके साथ कुछ प्रेमकी भी यह अधिकारिणी है। धूप, हवा और पानीके प्रभावसे पीछेकी ओर ऊपरकी पपड़ी रिपर पड़नेपर भी इसका लावण्य खण्डित नहीं हुआ है।"

प्राच्यविद्यामहार्णव डॉ० हीरालाल जैनने लिखा है कि—"एशिया खण्ड ही नहीं, समस्त भूतलका विचरण कर आइये, गोम्मटेश्वरकी तुलना करनेवाली मूर्ति आपको क्वचित् ही दृष्टिगोचर होगी। बड़े-बड़े पश्चिमीय विद्वानोंके मस्तिष्क इस मूर्तिकी कारीगरीपर चक्कर खा गये हैं। कम-से-कम एक हजार वर्षसे यह प्रतिमा सूर्य, मेघ, वायु आदि प्रकृतिदेवीकी अमोघ शक्तियोंसे बातें कर रही है, पर अब तक उसमें किसी प्रकारकी थोड़ी-सी भी क्षति नहीं हुई है, मानो मूर्तिकारने उसे आज ही उद्घाटित किया हो।"

ऊपर उल्लेख किया जा चुका है कि इस संसारकी अद्भुत मूर्तिके प्रतिष्ठाता गंगवशी राजा राचमल्लके प्रधान आमात्य और सेनापति चामुण्डराय हैं। चामुण्डरायको शिलालेखोंमें समरधुरन्धर, रणरंगसिंह, वैरिकुलकालदण्ड, असहायपराक्रम, समरपरशुराम, वीरमार्त्तण्ड, भटशिरोमणि आदि उपाधियोंसे विभू-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

षित किया गया है। चामुण्डराय अपनी सत्यप्रियता और धर्मनिष्ठाके कारण "सत्य युधिष्ठिर" भी कहे जाते थे। इनकी जैनधर्ममें अनुपमेय निष्ठा होनेके कारण जैन ग्रन्थकारोंने भी इन्हें सम्यक्त्वरत्नाकर, गुणरत्न-भूषण, शौचाभरण आदि विशेषणों (उपाधियों) द्वारा उल्लेखित किया है। इन्हीं चामुण्डरायने गोम्मटेश्वरकी महामूर्तिकी प्रतिष्ठा २३ मार्च ई० सन् १०२८ में कराई थी, जैसाकि इस मूर्तिपर उत्कीर्ण लेखसे विदित है।

महामस्तकाभिषेक

इस मूर्त्तिका महामस्तकाभिषेक बड़े समारोहके साथ सम्पन्न होता है। ऐतिहासिक दृष्टिसे इसके महामस्तकाभिषेकोंका वर्णन ई० सन् १५००, १५९८, १६१२, १६७७, १८२५ और १८२७ के उत्कीर्ण शिलालेखोंमें मिलता है, जिनमें अभिषेक करानेवाले आचार्य, गृहस्थ, शिल्पकार, बढ़ई, दूध, दही आदिका ब्यौरा मिलता है। इनमें कई मस्तकाभिषेक मैसूर-नरेशों और उनके मन्त्रियोंने स्वयं कराये हैं। सन् १९०९ में भी मस्तकाभिषेक हुआ था, उसके बाद मार्च १९२५ में भी वह हुआ, जिसे मैसूर नरेश महाराज कृष्णराज बहादुरने अपनी तरफसे कराया था और अभिषेकके लिए पाँच हजार रुपये प्रदान किये थे तथा स्वयं पूजा भी की थी। इसके अनन्तर सन् १९४० में भी गोम्मटेश्वरकी इस मूर्तिका महामस्तकाभिषेक हुआ था। उसके पश्चात् ५ मार्च १९५३ में महामस्तकाभिषेक किया गया था, उस समय भारतके कोने-कोनेसे लाखों जैन इस अभिषेकमें सम्मिलित हुए थे। इस अवसरपर वहाँ दर्जनों पत्रकार, फोटोग्राफर और रेडियोवाले भी पहुँचे थे। विश्वके अनेक विद्वान् दर्शक भी उसमें शामिल हुए थे।

समारोह २१ फरवरी १९८१ में जो महामस्तकाभिषेक हुआ, वह सहस्राब्धि-महामस्तकाभिषेक महोत्सव था। इस महोत्सवका महत्त्व पिछले महोत्सवोंसे बहुत अधिक रहा। कर्नाटक राज्यके माननीय मुख्यमन्त्री गुंडुराव और उनके सहयोगी अनेक मन्त्रियोंने इस महोत्सवको राज्यीय महोत्सव माना और राज्यकी ओरसे उसकी सारी तैयारियाँ की गयीं। प्रधानमन्त्री श्रीमती इन्दिरागांधी और अनेक केन्द्रीय मन्त्रिगण भी उक्त अवसर पर पहुँचे थे। लाखों जैनोंके सिवाय लाखों अन्य भाई और बहनें भी इस उत्सवमें सम्मिलित हुए। विश्वधर्मके प्रेरक एलाचार्य मुनि विद्यानन्दके प्रभावक तत्त्वावधानमें यह सम्पन्न हुआ, जिनके मार्गदर्शनमें भगवान् महावीरका २५०० वाँ निर्वाण महोत्सव सारे राष्ट्रने व्यापक तौरपर १९७४ में मनाया।

भारतीय प्राचीन संस्कृति एवं त्याग और तपस्याकी महान् स्मारक यह गोम्मटेश्वरकी महामूर्ति युग-युगों तक विश्वको अहिंसा और त्यागकी शिक्षा देती रहेगी।

■

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org